हाशिए का
समाज और साहित्य
सम्पादक
डॉ. रेखा दुबे

लेखक व प्रकाशक की लिखित अनुमति के बिना इस पुस्तक को पूरी तरह अथवा आंशिकतौर पर या पुस्तक के किसी भी अंश को फोटोकॉपी, रिकार्डिंग अथवा इलेक्ट्रॉनिक अथवा ज्ञान के किसी भी माध्यम से भाव व पुन: प्रयोग की किसी भी प्रणाली द्वारा इस पुस्तक का कोई भी अंश प्रेषित, प्रस्तुत अथवा पुनरुत्पादित न किया जाए। प्रस्तुत पुस्तक में लेखक के अपने विचार और सामग्री है, जिससे प्रकाशक का कोई लेना-देना नहीं है।

Hashiye ka Samaj Aur Sahitya

Edt. by

Dr. Rekha Dubey

I.S.B.N. : 978-93-94083-01-1

© डॉ. रेखा दुबे

मूल्य : 550.00 रुपये

प्रथम संस्करण : सन् 2022

प्रकाशक : नीरज बुक सेन्टर

C-32, आर्यनगर सोसायटी, प्लॉट-91, आई.पी. एक्सटेंशन, दिल्ली-110092

दूरभाष : 8800139684

वितरक : भावना प्रकाशन, दिल्ली-91

आवरण : नीरज मित्तल

शब्द संयोजक : पंकज ग्राफिक्स, दिल्ली-110092

मुद्रक : राधा ऑफसेट, दिलशाद गॉर्डन, दिल्ली

Published by : **Neeraj Book Centre,** C-32,Aryanagar Society, Plot-91, I.P. Extension, Delhi-110092, INDIA.
E-mail : bhavnaprakashan@gmail.com

अनुक्रमणिका

हाशिए का समाज प्रगति की ओर
-प्रो. सुरेश माहेश्वरी
: 15

स्त्री विमर्श एवं स्त्री संघर्ष भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के इतिहास के विशेष संदर्भ में
-श्रीमती मंजू साहू
: 24

आधुनिक चिंतन और साहित्य (आदिवासी विमर्श)
- डॉ. अंजू तिवारी
: 28

आदिवासी विमर्श अस्तित्व और अस्मिता का विमर्श
-डॉ. रीना तिवारी / आकाश गुप्ता
: 32

आदिवासी-विमर्श
-श्रीमती आभा गुप्ता
: 38

हाशिए का समाज : घुमंतू जनजातियों का इतिहास और विकास
-डॉ. स्वामी राम बंजारे
: 45

अल्पसंख्यक-विमर्श एक साहित्यिक विकास
-रेणु शरण
: 54

'शिकंजे का दर्द' : दलित एवं नारी-शोषण की संघर्ष-गाथा
-अन्तिमा गुप्ता
: 62

दलित साहित्य एवं साहित्यकार
-प्रो. एन.आर.साव / डॉ. (श्रीमती) बसंत नाग
: 70

स्त्री-विमर्श एवं स्त्री-संघर्ष भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के इतिहास के विशेष संदर्भ में

श्रीमती मंजू साहू

भारत वर्ष के स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास मूलरूप में पितृसत्तात्मक राष्ट्रवा परंतु हमारे देश में स्त्री आंदोलन भी इसी सांचे के साउन्नत होता हुआ, प्रती होता है। 19वीं सदी के उत्तरार्ध एवं बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध के मध्य विकसि होते हुए स्त्री आंदोलन को स्वतंत्रता आंदोलन से भिन्न कर नहीं देखा जा सकता है वरन् अनेक स्तरों पर उनके अपने संघर्ष व आंदोलन भी रहे हैं। स्त्री संघर्ष का प्रारंभ का स्पष्टीकरण वहीं होता है, जब राष्ट्रीय आंदोलन की नेतृत्व करने वाली स्त्रियों के तात्कालीन स्थिति में सुधार लाने की के लिए क़दम उठाए गया, परंतु स्त्री को परंपरागत परिवार के दायरे में सीमित रखकर व सामाजिक स्तर पर स्त्री की राष्ट्रमाता की छवि निर्मित कर सके। जहाँ पर ना तो स्त्री का स्वतंत्र व्यक्तित्व है और ना ही उनकी स्वतंत्र अस्तित्व।

तत्कालीन परिस्थिति में स्त्री संघर्ष को इसी राष्ट्रवादी आंदोलन की जमीन से स्वयं को अभिव्यक्त करना पड़ा। उस परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए भारत के राष्ट्रवादी आंदोलन एवं स्त्री आंदोलन को अन्योन्याश्रित भी कहा जा सकता है जबकि वैश्विक विचारधारा के अनुसार राष्ट्रवाद एवं स्त्रीवाद एक-दूसरे पर आश्रित नहीं है। जिस प्रकार स्त्री आंदोलन को राष्ट्रवादी आंदोलन के मध्य से ही अपना स्वरूप तलाशना पड़ा एवं अपना आधार स्वयं ही बनाना पड़ा, उसी प्रकार राष्ट्रवादी स्वतंत्रता आंदोलन को अंग्रेजों के खिलाफ़ आधी जनता के साथ की आवश्यकता थी। राष्ट्रवादी आंदोलन के प्रारंभ के लिए स्त्रियों के संघर्ष के लिए अंग्रेजों से लड़ने तक ही थी न कि उसके साथ स्त्री के अपने सामाजिक व सांस्कृतिक व्यक्तित्व एवं पहचान के संदर्भ में। स्वतंत्रता के बाद स्त्री का पृथक व्यक्तित्व और उसकी अपनी दशा पितृसत्तात्मक परिवार के दकियानूसी वातावरण से ही बंधे रहने के लिए अभिशप्त था क्योंकि स्त्री के स्तर से लोगों के पास न तो कोई अन्य विकल्प था व न ही उस विकल्प की कोई अवधारणा

19वीं सदी तक समाज सुधार एवं राष्ट्रवाद की ओर अग्रसर स्त्री संघर्ष 20वीं सदी के प्रारंभ में स्त्री अधिकारों के प्रति सचेत हुआ। यह समय ऐसा था जब समस्त भारत में स्त्रियाँ राष्ट्रीय स्तर के मंचों पर संगठित हुईं व अनेक स्थानीय संगठन इनसे जुड़े। 1908 ई. में संपन्न महिला कांग्रेस सम्मेलन हो या 1917 में गठित विमेंस इंडियन एसोसिएशन ऐसे ही बड़े संगठन थे। भारत में स्त्रियों के ऐसे संगठनों की सबसे बड़ी विडंबना रही, हिन्दू धर्म व उस समय की पुनरूत्थानवादी राष्ट्रीय विचारधारा। एक ओर जहाँ रमाबाई जैसी स्त्री को हिन्दू धर्म छोड़ना पड़ा वहीं दूसरी ओर होमरूल जैसे आंदोलन का हिन्दूत्व से ओत-प्रोत धर्मिक स्वरूप जिसमें स्त्रियों की बड़े स्तर पर सक्रिय भागीदारी थी। यही एक बड़ा कारण रहा दलित आंदोलन व स्त्री आंदोलन की संवेदनात्मक स्तर की दूरी का भी। इसके बावजूद संघर्ष की इतनी लंबी परंपरा को किसी प्रकार से नकारा नहीं जा सकता है, जहाँ स्त्रियाँ अपने अधिकारों की माँग के साथ खड़ी हो रही थी। सरला देवी जैसी पुनरूत्थानवादी स्त्री ने विधवाओं की शिक्षा व उनके अधिकारों की माँग की थी। इस रूप में उस समय स्त्रियों की लड़ाई दोहरे स्तर पर चल रही थी, एक तो उपनिवेशवादी ताकतों के खिलाफ़, व दूसरी ओर उनके अपने घर में नियति निर्धारित करनेवाली पुरुषवादी मानसिकता के खिलाफ़।

1918 ई. के कांग्रेस बैठक में स्त्रियों को दिए गए मताधिकार को राष्ट्रवादी आंदोलन की अपनी आवश्यकताओं व उसमें से विकसित होते स्त्री आंदोलन के संदर्भ में देखने की आवश्यकता है। राष्ट्रवादी आवश्यकता से आशय साम्राज्यवादियों की उस विचारधारा से लड़ने के परिप्रेक्ष्य में है जो लार्ड मेयो के 'मदर इंडिया' में दिखाई देती है। स्त्रियों के अपने अधिकारों की माँग व साम्राज्यवादी ताकतों से लड़ने में उनकी भूमिका इस मताधिकार की पृष्ठभूमि निर्मित करता है। स्त्री का मताधिकार स्त्री के अधिकार व न्याय की उन तमाम मांगों से जुड़ी हुई थी, जिसके लिए सावित्रीबाई, रमाबाई, काशीबाई कानितकर, आनंदीबाई, मैरी शेरे, गोदावरी समस्कर, पार्वती बाई, सरलाबाई, भगिनी निवेदिता से लेकर भीकाजी कामा, कुमुदिनी मित्रा, लीलावती मित्रा जैसी महिलाओं ने अनेक स्तरों पर संघर्ष किया एवं ऐसे हज़ारों नाम इतिहास के पन्ने पर लिखे जा सकते हैं। कांग्रेस की राष्ट्रवादी विचारधारा का प्रभाव ऐनी बेसेंट तथा सरोजनी नायडू जैसी महिलाओं के ऊपर था।

दूसरे शब्दों में कहें तो साम्राज्यवाद से लड़ने के लिए एक ऐसी स्त्री राष्ट्रवाद से लड़ने के लिए एक ऐसी स्त्री राष्ट्रवाद के अंतर्गत गढ़ी जा रही थी, जो एक

ओर तो उपनिवेशवाद के खिलाफ़ अपना सर्वस्व झोंक दे परंतु दूसरी ओर स्त्रियों के लिए बनाए गए नियमों के आधुनिक रूप से बची रहे। स्त्री के स्वतंत्र व्यक्तित्व अथवा अस्मिता से उसका कोई सरोकार न हो।

यही कारण है कि सरोजनी नायडू जैसी महिला ने भारत के स्त्री आंदोलनों को स्त्रीवाद आंदोलन नहीं माना व उसे पश्चिम में चल रहे स्त्री आंदोलन से अलग माना। फिर भी स्त्रियाँ अपने हक और न्याय की लड़ाई को आगे बढ़ाती रहीं। चूँकि कोई भी आंदोलन कुछ नीति निर्धारक तत्वों के आधार पर जीवित नहीं रहता, विशेषकर तब जब उस आंदोलन की लड़ाई बहुस्तरीय हो। राष्ट्रवादी विचारधारा के आग्रहों के बावजूद स्त्री के सामाजिक अधिकारों के प्रति एनी बेसेंट स्त्रियों की जागरूकता को नजरंदाज नहीं किया जा सकता है। "पुरुष का एक अधिकार स्वीकार्य सिद्धांत बन चुका है, परंतु दुर्भाग्यवश विश्व के विशेष दृष्टिकोण में वह केवल पुरुषों का अधिकार है। ये अधिकार लैंगिक अधिकार है न कि मानवीय अधिकार, और जब तक ये मानवीय अधिकार नहीं बनते तब तक समाज एक औचित्यपूर्ण, सुरक्षित नींव पर खड़ा नहीं हो सकता।" (राधा कुमार-"स्त्री संघर्ष का इतिहास" से उद्धृत, पृष्ठ 107

इसी संदर्भ में सुमन राजे ने स्पष्ट करते हुए लिखा है कि आज तक हम राजनीतिक-सामाजिक स्वतंत्रता की ही व्याख्या नहीं कर सके हैं तथा स्त्री स्वतंत्रता की बात उसी परिपेक्ष्य में की जा सकती है। निरपेक्ष स्वतंत्रता जैसी कोई चीज़ नहीं हो सकती। स्वतंत्रता का मूल अभिप्राय होता है 'निर्णय की स्वतंत्रता' व स्त्री स्वतंत्रता का रूप क्या होगा, वह स्वयं स्त्रियों को ही तय करना है, यह निर्णय कुछ विशिष्ट महिलाओं द्वारा नहीं लिया जा सकता।

स्त्री विमर्श पितृसत्ता के खिलाफ़ मुखर होते हुए अब इस जगह पर पहुँच गया है, जहाँ स्त्री अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व की पहचान कर पाने में सक्षम है। यही आधार है, जहाँ से सामाजिक तथा लैंगिक विभाजन के स्थान पर मनुष्यता की पहचान प्रारंभ होती है। यह आधार स्त्रियों के लंबे संघर्ष से ही निर्मित हुआ है। यदि भारत में स्त्रियों के संघर्ष का लंबा इतिहास नहीं होता तो किसी सैद्धांतिकी अथवा अवधारणा पर आधारित लेखन का बहुस्तरीय भारतीय समाज के संदर्भ में न तो ख़ास प्रांसगिकता होती व न ही उसका आधार देशज स्वरूप निर्मित हो पाता। न्याय की लड़ाई के लिए होने वाले किसी भी आंदोलन का प्रभाव किसी ज़िम्मेदार लेखक की लेखनी पर पड़ता है चाहे वह प्रत्यक्षत: उस आंदोलन का नेतृत्वकर्ता न भी रहा हो। ऐसी परिस्थिति में उसकी ज़िम्मेदारियों पर सवाल उठाया जा सकता है, लेकिन उसके लेखन को नकारा नहीं जा सकता।

इतिहास में स्त्री विमर्श मात्र पूर्वाग्रहों या व्यक्तिगत विश्वासों तक ही सीमित नहीं है। इसके और भी कुछ आयाम हैं और इन आयामों को तलाशने की जरूरत हमारे आलोचकों को है न कि सिर्फ चंद नामों के आधार पर एक खास दायरे में बांधने की। कला साहित्य के हर विचारधारात्मक संघर्ष के पीछे अपने समय और समाज के परिवर्तनों को ध्यान में रखना जरूरी है। यहाँ तक की स्थिति को निर्धारित करने वाले संस्थाओं में आए हुए परिवर्तनों को लक्ष्य करना जरूरी है।

यथा 16 दिसम्बर की घटना के बाद आने वाली वर्मा कमेटी की रिपोर्ट ऐसे ही परिवर्तनों का परिणाम है। जहाँ तक हिन्दुस्तान में संस्कृति बदलने की लड़ाई के प्रारंभ होने की बात है तो वह उसी दिन पहली स्त्री ने अपने अधिकारों की माँग करके वर्चस्वशाली संस्कृति के समक्ष प्रतिरोधात्मक संस्कृति की शुरूआत की होगी। हम नहीं जानते कि वह स्त्री कौन थी व उसकी क्या माँग थी। हो सकता है कि उसकी पहली लड़ाई अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को लेकर ही रही हो। 16 दिसम्बर की घटना के बाद उठने वाला आंदोलन सांस्कृतिक वर्चस्व के खिलाफ हुए संघर्षों के लम्बे इतिहास का एक बड़ा अध्याय है तथा इस अध्याय का इस रूप में लिखा जाना तभी संभव हो सका जब उसकी एक मजबूत पृष्ठभूमि निर्मित हो चुकी थी। चाहे मथुरा रेप केस रहा हो या माया त्यागी रेप केस या मनोरमा देवी रेप केस रहा हो, यहाँ के पुरुषवादी सत्ता-विमर्श विद्रूपता को दिखाने के लिए ऐसे हजारों नाम लिए जा सकते जा सकते हैं और उनके विरोध में उठने वाले छोटे से छोटे स्वर को सांस्कृतिक वर्चस्व का प्रतिरोध माना जाना चाहिए।

संदर्भ :

1. कुमार, राधा, स्त्री संघर्ष का इतिहास
2. यादव, राजेन्द्र, आदमी के निगाह में औरत, औरत उत्तर कथा
3. प्रसाद, कमला, अरविंद जैन, स्त्री मुक्ति का सपना
4. इस्सर, देवेन्द्र, स्त्री मुक्ति के प्रश्न
5. शर्मा, नासिरा, औरत के लिए औरत

-श्रीमती मंजू साहू

सहा. प्राध्यापक सामाजिक विज्ञान (इतिहास)

डॉ. सी.वी. रामन विश्वविद्यालय, कोटा, बिलासपुर (छ.ग.)

मो. : 9754482006/9340427486

E-mail : jeeteshsahu.974@gmail.com